सोचने की बातें

सय्यद अबुल आला मौदूदी

अनुवादक

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

दो शब्द

यह पुस्तिका 'सोचने की बातें' एक बहुत अहम लेख है जिसमें लेखक ने इस्लाम और क़ुरआन की अहमियत बहुत-ही प्रभावकारी तरीक़े से बयान की है और बताया है कि इस्लाम और क़ुरआन ऐसी नेमतें हैं जिन को अपनाकर हम दुनिया व आख़िरत में कामयाब हो सकते हैं।

यह ऐसा लेख है जिसे आप बार-बार पढ़ने पर मजबूर होंगे और जब भी इसे पढ़ेंगे, आपके रोंगटे खड़े हो जाएँगे, आपकी नज़रों पर से ग़फ़लत और अज्ञान के परदे उठने शुरू हो जाएँगे। इसे पढ़कर आपकी दुनिया बदल जाएगी, सोचने समझने के पैमाने तब्दील हो जाएँगे, आपकी अपनी असल मंज़िल निश्चित हो जाएगी और ज़िन्दगी का मक़्सद खुलकर सामने आ जाएगा।

आप अगर इस पुस्तिका को मुफ़ीद पाएँ तो इसे दूसरों को भी पढ़वाएँ और अपने आपको इस्लामी सांचे में ढालने की कोशिश करें।

इस्लामी-साहित्य ट्रस्ट (रजि०) हिन्दी ज़ुबान में इस्लामी शिक्षाओं पर आधारित किताबें तैयार करने की खिदमत में लगा हुआ है। इस पुस्तिका को आपकी सेवा में पेश करने का हमें सौभाग्य मिला इस

पर हम अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं।

अल्लाह से दुआ है कि वह इस पुस्तिका को ज़्यादा से ज़्यादा मुफ़ीद बनाए।

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

अध्यक्ष

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
अल्लाह रहमान रहीम के नाम से

सोचने की बातें

दुनिया में इस समय मुसलमान ही वे ख़ुशक़िस्मत लोग हैं, जिनके पास अल्लाह का कलाम बिल्कुल सुरक्षित, हर प्रकार के परिवर्तन और कांट-छांट से पाक, ठीक-ठीक उन्हीं शब्दों में मौजूद है, जिन शब्दों में वह अल्लाह के सच्चे रसूल मुहम्मद सल्ल० पर उतरा था। लेकिन दुनिया में इस समय मुसलमान ही वे बदक़िस्मत लोग हैं जो अपने पास अल्लाह का कलाम रखते हैं और फिर भी उसकी बरकतों और उसकी अनगिनत नेमतों से वंचित हैं। क़ुरआन उनके पास इसलिए भेजा गया था कि उसको पढ़ें, समझें, उसके अनुसार चलें और उसको लेकर अल्लाह की ज़मीन पर अल्लाह के क़ानून की हुकूमत क़ायम कर दें। वह उनको इज़्ज़त और ताक़त देने आया था। वह उन्हें ज़मीन पर अल्लाह का असली ख़लीफा (प्रतिनिधि) बनाने आया था और इतिहास गवाह है कि जब उन्होंने उसके निर्देशानुसार काम किया तो उसने उनको दुनिया का इमाम और पेशवा बनाकर भी दिखा दिया। मगर अब उनके पास इसका इस्तेमाल सिवा इसके और कुछ नहीं रहा कि घर में उसको रखकर भूत-प्रेत आदि भगायें। उसकी आयतों को गले में बांधें और घोलकर पीयें और केवल सवाब के लिए बेसमझे-बूझे, उसे पढ़ लिया करें। अब ये इससे अपने जीवन के मामलों में हिदायत नहीं मांगते, ये इससे नहीं पूछते कि हमारे अक़ीदे क्या होने चाहियें? हमारे कर्म कैसे होने चाहियें? हम जीवन कैसे बसर करें? दुश्मनी और दोस्ती में किस क़ानून की पाबंदी करें? अल्लाह के बन्दों और स्वयं अपने-आप के हक़ हम

पर क्या हैं और उन्हें किस तरह अदा करें? हमारे लिए सही क्या है और ग़लत क्या? हमें फ़रमांबरदारी किसकी करनी चाहिए और नाफ़रमानी किसकी? संबंध और ताल्लुक़ात किससे होना चाहिएं और किससे नहीं होना चाहिएं? हमारा दोस्त कौन है और दुश्मन कौन? हमारे लिए इज़्ज़त, कामियाबी और फ़ायदा किस चीज़ में है और ज़िल्लत, नाकामी और नुक़सान किस चीज़ में? ये सारी बातें अब मुसलमानों ने क़ुरआन से पूछनी छोड़ दी हैं। अब ये शिर्क और कुफ़्र करने वालों से, गुमराह, स्वार्थी और सत्यमार्ग से हटे हुए लोगों से और ख़ुद अपने मन के शैतान से इन बातों को पूछते हैं और उन्हीं के कहने पर चलते हैं। इसलिए अल्लाह को छोड़कर दूसरों के हुक्म पर चलने का जो अन्जाम होना चाहिए, वही उनका हुआ और इसी को आज भारत में, चीन और जावा में, फ़लस्तीन और सीरिया में, अलजज़ाइर और मराकश में, हर जगह मुसलमान बुरी तरह भुगत रहे हैं। क़ुरआन तो भलाई का स्रोत है, जितनी और जैसी भलाई तुम इससे मांगोगे, यह तुम्हें देगा। तुम इससे केवल भूत-प्रेत भगाना और खांसी-बुख़ार का इलाज और मुक़दमे की कामियाबी और नौकरी की प्राप्ति और ऐसी ही छोटी-छोटी मामूली बेहक़ीक़त चीज़ें मांगते हो तो यही तुम्हें मिलेंगी। अगर दुनिया की बादशाही और धरती का राज्य मांगोगे तो वह भी मिलेगा और अगर ईश-सिंहासन (अर्शे-इलाही) के निकट पहुंचना चाहोगे तो यह तुम्हें वहां भी पहुंचा देगा। यह तुम्हारी अपनी क्षमता की बात है कि समुद्र से पानी की दो बूंदें मांगते हो, वरना समुद्र तो दरिया प्रदान करने के लिए भी तैयार है।

जो हास्ययुक्त ज़ुल्म और अन्याय हमारे मुसलमान भाई अल्लाह की इस किताब के साथ करते हैं, वे इतने ज़्यादा हास्यप्रद हैं कि अगर वे स्वयं किसी दूसरे मामले में किसी व्यक्ति को ऐसी हरकतें करते देखें, तो उसकी हंसी उड़ायें, बल्कि उसको पागल कहें। बताइए अगर कोई व्यक्ति हकीम से नुस्ख़ा लिखवाकर लाये और उसे कपड़े में लपेटकर

गले में बांध ले, या उसे पानी में घोलकर पी जाए, तो आप उसे क्या कहेंगे? क्या आपको उसपर हंसी न आएगी? और आप उसे बेवक़ूफ़ न समझेंगे? मगर सबसे बड़े हकीम ने आपकी बीमारियों के इलाज के लिए जो दयायुक्त बेमिसाल नुस्ख़ा लिखकर दिया है, उसके साथ आपकी आंखों के सामने दिन-रात यही सुलूक हो रहा है और किसी को इसपर हंसी नहीं आती, कोई नहीं सोचता कि नुस्ख़ा गले में लटकाने और घोलकर पीने की चीज़ नहीं है, बल्कि इसलिए होता है कि उसके अनुसार दवा इस्तेमाल की जाए।

बताइए, अगर कोई बीमार हो और वह डाक्टरी की कोई किताब लेकर पढ़ने बैठ जाय और यह ख़याल करे कि केवल इस किताब को पढ़ लेने से बीमारी दूर हो जाएगी, तो उसे आप क्या कहेंगे? क्या आप यह न कहेंगे कि भेजो इसे पागलख़ाने में, इसका दिमाग़ ख़राब हो गया है? मगर अल्लाह जो सब प्रकार के रोग मुक्त करने वाला है, उसने जो किताब आपकी बीमारी का इलाज करने के लिए भेजी है, उसके साथ आपका यही बर्ताव है। आप उसको पढ़ते हैं और यह ख़याल करते हैं कि बस इसके पढ़ लेने ही से तमाम बीमारियां दूर हो जायेंगी। इसकी हिदायत पर अमल करने की ज़रूरत नहीं। और न उन चीज़ों से परहेज़ की ज़रूरत है, जिनको यह नुक़्सानदेह बता रही है। फिर आप ख़ुद अपने ऊपर वही हुक्म क्यों नहीं लगाते जो उस व्यक्ति पर लगाते हैं जो बीमारी दूर करने के लिए सिर्फ़ डाक्टरी की किताब पढ़ लेने को काफ़ी समझता है।

आप के पास अगर कोई ख़त ऐसी भाषा में आता है जिसे आप जानते न हों तो आप दौड़े हुए जाते हैं कि उस भाषा के जानने वाले से उसका मतलब पूछें। जब तक आप उसका मतलब नहीं जान लेते आपको चैन नहीं आता। यह मामूली कारोबार के ख़त के साथ आप का मामला है, जिसमें अधिक से अधिक चार पैसों का फ़ायदा हो जाता है। मगर ख़ुदावन्दे आलम का जो ख़त आपके पास आया हुआ है

और जिसमें आपके लिए दीन और दुनिया के तमाम फ़ायदे हैं, उसे अपने पास यों ही रख छोड़ते हैं। इसका मतलब समझने के लिए कोई बेचैनी आपके अन्दर पैदा नहीं होती। क्या यह हैरत और आश्चर्य की बात नहीं?

ये बातें हंसी और दिल्लगी की बातें नहीं हैं। आप इन बातों पर विचार करें तो आपका दिल गवाही देगा कि दुनिया में सबसे बढ़कर ज़ुल्म अल्लाह की इस किताब के साथ हो रहा है और यह ज़ुल्म करने वाले वही लोग हैं जो कहते हैं कि हम इस किताब पर ईमान रखते हैं और इसपर जान देने के लिए तैयार हैं। बेशक वे ईमान रखते हैं और उसे जान से ज़्यादा चाहते हैं। मगर अफ़सोस यह है कि यही उसपर सबसे ज़्यादा ज़ुल्म करते हैं और अल्लाह की किताब पर ज़ुल्म करने का जो अंजाम है वह ज़ाहिर है। ख़ूब समझ लीजिए, अल्लाह का कलाम इन्सान के पास इसलिए नहीं आता है कि इन्सान दुर्भाग्य, दुर्दशा और मुसीबत में ग्रस्त हो जाए।

> 'तुम्हें दुर्भाग्य और दुर्दशा में ग्रस्त करने के लिए हमने तुम पर क़ुरआन नहीं उतारा है।' (क़ुरआन)

यह सौभाग्य का स्रोत है, मुसीबत और दुर्भाग्य का कारण नहीं है। यह बिल्कुल नामुमकिन है कि कोई क़ौम अल्लाह का कलाम अपने पास रखती हो और वह दुनिया में बेइज़्ज़त हो रही हो। दूसरों के आधीन हो। पांव से रौंदी और दुनिया से ठुकराई जाए। उसके गले में ग़ुलामी का फन्दा हो और ग़ैरों के हाथों में उसकी लगाम हो और वे उसको इस तरह हांकें जैसे जानवर हांके जाते हैं। यह अन्जाम उसका सिर्फ़ उसी समय होता है, जब वह अल्लाह के कलाम पर ज़ुल्म करती है। बनी इसराईल का अन्जाम आपके सामने है। उनके पास तौरात और इन्जील भेजी गई थी और कहा गया था कि –

> 'और अगर वे तौरात और इन्जील और उन किताबों की पैरवी पर क़ायम रहते जो उनके रब की ओर से उनके पास भेजी

गई थीं तो उनपर आसमान से रिज़्क़ बरसता और ज़मीन से रिज़्क़ उबलता।' (क़ुरआन)

मगर उन्होंने अल्लाह की किताबों पर ज़ुल्म किया और नतीजा यह देखा कि—

'उन पर ज़िल्लत और मुहताजी थोप दी गई और ख़ुदा के ग़ज़ब में घिर गए यह इसलिए कि वे अल्लाह की आयतों से कुफ़्र करने लगे थे और पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल करते थे और इसलिए कि वे अल्लाह के नाफ़रमान हो गए थे और हद से गुज़र गए थे।' (क़ुरआन)

अर्थात् जो लोग ख़ुदा की किताब रखते हों और फिर भी बेइज़्ज़त और पराधीन हो रहे हों तो समझ लीजिए कि वे अवश्य अल्लाह की किताब पर ज़ुल्म कर रहे हैं और उनपर यह सारा वबाल इसी ज़ुल्म की वजह से है। ख़ुदा के इस ग़ज़ब से छुटकारा पाने की इसके अलावा कोई सूरत नहीं कि उसकी किताब के साथ ज़ुल्म करना छोड़ दिया जाए और उसका हक़ अदा करने की कोशिश की जाए। अगर आप इस बड़े गुनाह से अपने को दूर नहीं रखेंगे तो आपकी हालत हरगिज़ नहीं बदलेगी, चाहे आप गांव-गांव कालिज खोल दें और आपका बच्चा-बच्चा ग्रेजुएट हो जाए और चाहे आप यहूदियों की तरह ब्याज खा-खाकर करोड़पति ही क्यों न बन जायें।

हर मुसलमान को सबसे पहले जो चीज़ जाननी चाहिए, वह यह है कि 'मुसलमान' कहते किसको हैं और 'मुस्लिम' के मायने क्या हैं? अगर इन्सान यह न जानता हो कि 'इन्सानियत' क्या चीज़ है और इन्सान तथा जानवर में क्या फ़र्क़ है तो वह जानवरों जैसी हरकतें करेगा और अपने इन्सान होने की क़द्र न कर सकेगा। इसी तरह अगर किसी व्यक्ति को यह न मालूम हो कि मुसलमान होने के मायने क्या हैं और मुस्लिम तथा ग़ैर-मुस्लिम में फ़र्क़ किस तरह होता है तो वह ग़ैर-मुस्लिमों जैसी हरकतें करेगा और अपने मुसलमान होने की क़द्र न कर सकेगा। अतः

हर मुसलमान को और मुसलमान के हर बच्चे को इस बात का पता होना चाहिए कि वह जो अपने आपको मुसलमान कहता है तो इसका मतलब क्या है? मुसलमान होने के साथ ही आदमी की हैसियत में क्या फ़र्क़ पैदा हो जाता है, उसपर क्या ज़िम्मेदारी आन पड़ती है और इस्लाम की मर्यादा और हदें क्या हैं, जिनके अन्दर रहने से आदमी मुसलमान रहता है और जिनके बाहर क़दम रखते ही वह मुसलमानियत से ख़ारिज हो जाता है, चाहे वह अपनी ज़ुबान से अपने को मुसलमान ही कहता जाए।

इस्लाम के मायने ख़ुदा का आज्ञापालन और उसका कहा मानने के हैं। अपने-आपको ख़ुदा के सुपुर्द कर देना 'इस्लाम' है। ख़ुदा के मुक़ाबले में अपनी आज़ादी और ख़ुदमुख़्तारी को त्याग देना 'इस्लाम' है। ख़ुदा की बादशाही और फ़रमांबरदारी के आगे सर झुका देना 'इस्लाम' है। जो व्यक्ति अपने सारे मामलों को ख़ुदा के हवाले कर दे वह मुसलमान है और जो अपने मामलों को अपने हाथ में रखे या ख़ुदा के अलावा किसी और के सुपुर्द कर दे, वह मुसलमान नहीं है। मामले ख़ुदा के हवाले करने या सुपुर्द करने का मतलब यह है कि ख़ुदा ने अपनी किताब और रसूल के द्वारा जो हिदायत भेजी है, उसको क़ुबूल किया जाय। उसे क़ुबूल करने में कोई संकोच न हो और जीवन में जो मामला भी पेश आए, उसमें सिर्फ़ क़ुरआन और सुन्नत की पैरवी की जाय। जो व्यक्ति अपनी अक़्ल, दुनिया के दस्तूर और ख़ुदा के सिवा हर एक की बात को पीछे रखता है और हर मामले में ख़ुदा की किताब और उसके रसूल से पूछता है कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए और जो हिदायत वहां से मिले उसको निस्संकोच मान लेता है, और उसके ख़िलाफ़ जो कुछ होता है, उसे मानने से इन्कार कर देता है। वह और केवल वही 'मुसलमान' है। इसलिए कि उसने अपने-आपको बिल्कुल ख़ुदा के सुपुर्द कर दिया और अपने-आपको 'ख़ुदा के सुपुर्द करना ही 'मुसलमान' होना है। इसके विपरीत जो व्यक्ति

क़ुरआन और सुन्नत पर निर्भर नहीं करता, बल्कि अपने दिल का कहा करता है, या बाप-दादा से जो कुछ चला आ रहा हो, उसकी पैरवी करता है, या दुनिया में जो कुछ हो रहा हो, उसके अनुसार चलता है और अपने मामलों में क़ुरआन और सुन्नत से मालूम करने की ज़रूरत ही नहीं समझता कि उसे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए या अगर उसे मालूम हो जाए कि क़ुरआन और सुन्नत की हिदायत यह है और फिर उसके जवाब में कहता है कि मेरी अक़्ल इसे क़ुबूल नहीं करती इसलिए मैं इस बात को नहीं मानता। या कहता है कि बाप-दादा से तो इसके ख़िलाफ़ अमल चला आ रहा है, इसलिए मैं इसकी पैरवी न करूंगा। या दुनिया का रिवाज इसके ख़िलाफ़ है, अतः मैं उसी पर चलूंगा। ऐसा व्यक्ति हरगिज़ मुसलमान नहीं है। वह झूठ कहता है, अगर अपने-आपको मुसलमान कहता है।

आप जिस समय कलिमा 'ला इला-ह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' पढ़ते हैं और मुसलमान होने का इक़रार करते हैं, उसी समय आप मानो इस बात का इक़रार करते हैं कि आपके लिए क़ानून सिर्फ़ ख़ुदा का क़ानून है। आपका हाकिम सिर्फ़ ख़ुदा है, आपको आज्ञापालन केवल ख़ुदा का करना है और आपके निकट हक़ सिर्फ़ वह है जो ख़ुदा की किताब और उसके रसूल द्वारा मालूम हो। इसका मतलब यह है कि आप मुसलमान होते ही ख़ुदा के हक़ में अपनी आज़ादी से हट गए। अब आपको यह कहने का अधिकार ही न रहा कि मेरी राय यह है, या दुनिया का दस्तूर यह है, या ख़ानदान का रिवाज यह है, या फ़्लां हज़रत या फ़्लां बुज़ुर्ग यह फ़रमाते हैं। ख़ुदा के कलाम और उसके रसूल की सुन्नत के मुक़ाबले में आप कोई चीज़ पेश नहीं कर सकते। अब आपका काम यह है कि हर चीज़ को क़ुरआन और सुन्नत के सामने पेश करें। जो कुछ उसके अनुसार हो, उसे क़ुबूल करें और जो कुछ उसके विपरीत हो, उसे उठाकर फेंक दें, चाहे वह किसी की बात और किसी का तरीक़ा हो। अपने आपको मुसलमान भी कहना और फिर

क़ुरआन और सुन्नत के मुक़ाबले में अपने विचार या दुनिया के दस्तूर या किसी इन्सान की कथनी और करनी को प्राथमिकता देना, ये दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। जिस तरह कोई अन्धा अपने आपको आंखों वाला नहीं कह सकता और कोई नकटा अपने आपको नाक वाला नहीं कह सकता, उसी तरह कोई व्यक्ति अपने आपको मुसलमान भी नहीं कह सकता जो अपनी ज़िंदगी के सारे मामलों में क़ुरआन और सुन्नत के आधीन बनाने से इन्कार करे और ख़ुदा और रसूल के मुक़ाबले में अपनी अक़्ल या दुनिया के दस्तूर या किसी मनुष्य की कथनी-करनी को पेश करे।

जो व्यक्ति मुसलमान न रहना चाहता हो, उसे कोई मुसलमान रहने पर मजबूर नहीं कर सकता। उसे हक़ है कि जो धर्म चाहे अपनाए और अपना नाम जो चाहे रख ले, मगर जब वह अपने को मुसलमान कहता है, तो उसको ख़ूब समझ लेना चाहिए कि वह मुसलमान सिर्फ़ उसी समय रह सकता है, जब वह इस्लाम की सीमा में रहे। अल्लाह के कलाम और उसके रसूल की सुन्नत को हक़ और सच्चाई की कसौटी तसलीम करना और उसके ख़िलाफ़ जो भी चीज़ें हैं, उन्हें ग़लत समझना इस्लाम की सीमा है। इस सीमा में जो व्यक्ति रहे वही मुसलमान है। इससे बाहर क़दम रखते ही आदमी इस्लाम से निकल जाता है और इसके बाद वह अगर अपने आपको मुसलमान कहता है तो वह ख़ुद अपने आपको भी धोखा देता है और दुनिया को भी।

इस्लाम यह है कि आदमी सिर्फ अल्लाह का फ़रमांबरदार हो और हर ऐसे तरीक़े या क़ानून या हुक्म को मानने से इन्कार कर दे जो अल्लाह की भेजी हुई हिदायत के ख़िलाफ़ हो। इस्लाम और कुफ़्र का यह फ़र्क़ क़ुरआन मजीद में साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है। अतः फ़रमाया :

> 'जो व्यक्ति ख़ुदा की उतारी हुई हिदायत के अनुसार फ़ैसला न करे, ऐसे ही लोग वास्तव में काफ़िर हैं।' (माइदः)

फ़ैसला करने से मुराद यह नहीं है कि अदालत में जो मुक़दमा जाय

केवल उसीं का फ़ैसला ख़ुदा की किताब के अनुसार हो, बल्कि वास्तव में फ़ैसले से मुराद वह फ़ैसला है जो हर व्यक्ति अपने जीवन में हर समय किया करता है। हर मौक़े पर तुम्हारे सामने यह सवाल आता है कि फ़लां काम किया जाय या न किया जाय? फ़लां बात इस तरह की जाए या उस तरह की जाए? फ़लां मामले में यह तरीक़ा अपनाया जाय या वह तरीक़ा अपनाया जाय? ऐसे तमाम मौक़ों पर एक तरीक़ा ख़ुदा की किताब और उसके रसूल की सुन्नत बताती है और दूसरा तरीक़ा इन्सान के अपने मन की ख़्वाहिशें या बाप-दादा के तरीक़े या इन्सान के बनाए हुए क़ानून बताते हैं। अब जो व्यक्ति ख़ुदा के बताए हुए तरीक़े को छोड़कर किसी दूसरे तरीक़े के अनुसार काम करने का फ़ैसला करता है, वह वास्तव में कुफ़्र का तरीक़ा अपनाता है। अगर उसने अपनी सारी ज़िंदगी ही के लिए यही ढंग अपनाया हो तो वह पूरा काफ़िर है और अगर वह कुछ मामलों में तो ख़ुदा की हिदायत को मानता हो और कुछ में अपने मन की ख़्वाहिशों को या रीत-रिवाज को या इन्सानों के क़ानून को ख़ुदा के क़ानून पर प्राथमिकता देता हो, तो जितना भी वह ख़ुदा के क़ानून से बग़ावत करता है, उतना ही कुफ़्र में ग्रस्त है। कोई आधा काफ़िर है, कोई चौथाई काफ़िर है, किसी में दसवां हिस्सा कुफ़्र है और किसी में बीसवां हिस्सा। मतलब यह कि जितनी ख़ुदा के क़ानून से बग़ावत है, उतना ही कुफ़्र है।

इस्लाम इसके सिवा कुछ नहीं है कि आदमी सिर्फ़ ख़ुदा का बन्दा हो, न अपने मन का बन्दा, न बाप-दादा का बन्दा, न ख़ानदान और वंश का बन्दा, न मौलवी साहब और पीर साहब का बन्दा, न ज़मींदार साहब और मजिस्ट्रेट साहब का बन्दा। क़ुरआन में है:—

> 'क्या वे ख़ुदा की फ़रमांबरदारी के सिवा किसी और की फ़रमांबरदारी चाहते हैं? हालांकि ज़मीन और आसमान की हर चीज़ चाहे-अनचाहे ख़ुदा ही की फ़रमांबरदारी कर रही है और उसी की तरफ़ सबको पलटना है।'

असली दीन ख़ुदा की फ़रमांबरदारी करना और उसका हुक्म मानना है। ख़ुदा की इबादत के मायने यह नहीं है कि बस पांच समय उसके आगे सज्दा कर लो। बल्कि उसकी इबादत के मायने यह हैं कि रात-दिन में हर समय उसका हुक्म मानो। जिस चीज़ से उसने मना किया है, उससे रुक जाओ। जिस चीज़ का उसने हुक्म दिया है उसपर अमल करो। हर मामले में देखो कि ख़ुदा का क्या हुक्म है। यह न देखो कि तुम्हारा अपना दिल क्या कहता है? तुम्हारी अक़्ल क्या कहती है? बाप-दादा क्या कर गए हैं ? ख़ानदान और वंश वालों की क्या मर्ज़ी है? जनाब मौलवी साहब और जनाब पीर साहब क्या फ़रमाते हैं, और फ़लां साहब का क्या हुक्म है और फ़लां साहब की क्या मर्ज़ी है? अगर तुमने ख़ुदा को छोड़कर किसी की भी बात मानी तो मानो ख़ुदा के साथ उसको शरीक किया, उसको वह दर्जा दिया जो सिर्फ़ ख़ुदा का दर्जा है। हुक्म देने वाला तो सिर्फ़ ख़ुदा है।

'हुक्म देने का अख़्तियार सिर्फ़ अल्लाह को है।' (क़ुरआन)

बन्दगी के लायक़ सिर्फ़ वह है जिसने तुम्हें पैदा किया और जिसके बलबूते पर तुम ज़िन्दा हो। ज़मीन और आसमान की हर-हर चीज़ उसी की फ़रमांबरदारी कर रही है। कोई पत्थर किसी पत्थर की फ़रमांबरदारी नहीं करता। कोई पेड़ किसी पेड़ की फ़रमांबरदारी नहीं करता। कोई जानवर किसी जानवर की फ़रमांबरदारी नहीं करता। फिर क्या तुम जानवरों, पेड़ और पत्थरों से भी गए-गुज़रे हो गए कि वे तो सिर्फ़ ख़ुदा की फ़रमांबरदारी करें और तुम ख़ुदा को छोड़कर इन्सान की पैरवी करो।

इन्सान को सबसे बढ़कर गुमराह करने वाली चीज़ इन्सान के अपने मन की ख़्वाहिशें हैं। जो व्यक्ति ख़्वाहिशों का बन्दा बन गया, उसके लिए ख़ुदा का बन्दा बनना मुमकिन नहीं। ऐसा व्यक्ति तो हर समय यह देखेगा कि मुझे रुपया किस काम में मिलता है। मेरी इज़्ज़त और शोहरत किस काम में होती है। मुझे आनन्द और मज़ा किस काम में आता है। मुझे आराम और सुख किस काम में मिलता है। बस ये

चीज़ें जिस काम में होंगी उसी को वह अपनाएगा। चाहे ख़ुदा उससे मना करे। और ये चीज़ें जिस काम में न हों उसको वह हरगिज़ न करेगा। चाहे ख़ुदा उसका हुक्म दे। तो ऐसे व्यक्ति का ख़ुदा अल्लाह तआला न हुआ, उसका अपना मन ही उसका ख़ुदा हो गया। उसको हिदायत कैसे मिल सकती है? इस बात को क़ुरआन में यों बयान किया गया है:-

'(हे नबी !) तुमने उस व्यक्ति के हाल पर ग़ौर किया, जिसने अपने मन की ख़्वाहिशों को अपना ख़ुदा बना लिया है?'

यह तो गुमराही के आने का पहला रास्ता है। दूसरा रास्ता यह है कि बाप-दादा से जो रीति-रिवाज, जो अक़ीदे और विचार और जो रंग-ढंग चले आ रहे हों, आदमी उनका ग़ुलाम बन जाए और ख़ुदा के हुक्म से बढ़कर उनको समझे और अगर उनके ख़िलाफ़ ख़ुदा का हुक्म उसके सामने पेश किया जाय तो कहे कि मैं तो वहीं करूंगा, जो मेरे बाप-दादा करते थे और जो मेरे ख़ानदान और वंश का रिवाज है। जो व्यक्ति इस बीमारी में पड़ा हुआ है, वह ख़ुदा का बन्दा कब हुआ? उसके ख़ुदा तो उसके बाप-दादा और उसके ख़ानदान और वंश के लोग हैं। उसको यह झूठा दावा करने का क्या हक़ है कि मैं मुसलमान हूं।

गुमराही का तीसरा रास्ता क़ुरआन ने यह बताया है कि इन्सान जब ख़ुदा के हुक्म को छोड़कर दूसरे लोगों का हुक्म मानने लगता है और ख़्याल करता है कि फ़लां व्यक्ति बड़ा आदमी है, उसकी बात पक्की होगी। या फ़लां आदमी के हाथ में मेरी रोटी है इसलिए उसकी बात माननी चाहिए। या फ़लां व्यक्ति बड़ा अधिकार वाला है, इसलिए उसकी फ़रमांबरदारी करनी चाहिए या फ़लां साहब अपनी बद्दुआ (शाप) से मुझे तबाह कर देंगे या अपने साथ जन्नत में ले जायेंगे, इसलिए जो वह कहें वही सही है। या फ़लां क़ौम बड़ी तरक़्क़ी कर रही है, इसलिए उसके तरीक़े अपनाने चाहियें, तो ऐसे व्यक्ति पर अल्लाह की हिदायत

का रास्ता बन्द हो जाता है। क़ुरआन में है–

'और अगर तूने उन बहुत से लोगों का कहा माना जो ज़मीन में रहते हैं तो वह तुझको ख़ुदा के रास्ते से भटका देंगे।'

(अनआम:१४)

यानी आदमी सीधे रास्ते पर उस समय हो सकता है, जब उसका एक ख़ुदा हो। सैकड़ों, हज़ारों ख़ुदा जिसने बना लिए हों और जो कभी इस ख़ुदा के कहे पर चलता हो और कभी उस ख़ुदा के कहे पर चलता हो, वह सीधा रास्ता कहां पा सकता है?

अब आपको मालूम हो गया कि गुमराही के तीन बड़े सबब हैं–

- एक मन की बन्दगी,
- दूसरा बाप-दादा और ख़ानदान और वंश के रीति-रिवाजों की बन्दगी,
- तीसरा आमतौर पर दुनिया के लोगों की बन्दगी, जिनमें दौलतमन्द लोग और समय के शासक और बनावटी पेशवा और गुमराह क़ौमें सभी शामिल हैं।

ये तीन बड़े-बड़े बुत हैं जो ख़ुदाई के दावेदार बने हुए हैं। जो व्यक्ति मुसलमान बनना चाहता हो, उसको सबसे पहले इन तीनों बुतों को तोड़ना चाहिए, फिर वह वास्तव में मुसलमान हो जाएगा। वरना जिसने ये तीनों बुत अपने दिल में बिठा रखे हों उसका ख़ुदा का बन्दा होना मुश्किल है। वह दिन में पचास वक़्त नमाज़ें पढ़कर और दिखावे के रोज़े रखकर और मुसलमानों जैसी सूरत बनाकर इन्सानों को धोखा दे सकता है कि मैं पक्का मुसलमान हूं, मगर ख़ुदा को धोखा नहीं दे सकता।